International Journal of Sanskrit Research 2023; 9(3): 149-154

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2023; 9(3): 149-154
© 2023 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-03-2023
Accepted: 10-04-2023

Dr. Supriya Sanju
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Amity School of Liberal Arts, Amity University Haryana, India

Corresponding Author:
Dr. Supriya Sanju
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Amity School of Liberal Arts, Amity University Haryana, India

भगवान् भक्त और भक्ति

Dr. Supriya Sanju

DOI: https://doi.org/10.22271/23947519.2023.v9.i3c.2109

सारांश
भगवान् भक्त और भक्ति ये तीन शब्द एक दूसरे को जोड़ते हैं। जिस प्रकार हमें सुख में दुःख में भगवान् चाहिए तथैव भगवान् को भी भक्त की भक्ति चाहिए। भक्ति में इतनी शक्ति है कि वो भगवान को भक्त के पास आने को मजबूर कर देती है । एक भक्त को भक्ति के लिए भगवान की जरूरत नहीं, भक्ति है तो भगवान स्वयं ही आ जातें है । ईश्वर सब में है। मैं जो कुछ भी करता हूं उस सबको ईश्वर देखते हैं, जो ऐसा अनुभव करता है उसको कभी पाप नहीं लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार उचित है और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहार में दंभ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं उसे भक्ति में आनंद आता नहीं। भक्त के व्यव्हार में शुद्धता होनी चाहिए जिसका व्यवहार शुद्ध है वह जहां बैठा है, वहीं भक्ति करता है और वहीं उसका मंदिर है। विद्वानों का मानना है की व्यव्हार और भक्ति में बहुत अंतर नहीं है।रास्ता चलते, गाड़ी में यात्रा करते अथवा कोई भी कार्य करते सर्वकाल में और सर्वस्थल में भगवान् के प्रति सतत् भक्ति ही भक्त को सच्चा भक्त बनता है । भक्त के प्रत्येक कार्य में ईश्वर का अनुसंधान हो इसे ही भक्ति कहते हैं।

कूटशब्द : व्यवहार शुद्ध, व्यवहार में दंभ है, अभिमान है, कपट है,

प्रस्तावना
भगवान भक्त और भक्ति ये तीन शब्द एक ही माला में पिरोये गए मोती हैं। एक के भी अलग होने से सम्पूर्ण माला खंडित को जाएगी। क्योकि बिना भगवान के भक्त अधूरे है और भक्त और उनकी भक्ति के बिना भगवान। अतः भगवान भक्त और उनकी भक्ति प्राचीन काल से ही जीवन शैली का एक अभिन्न अंग रहा है।

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥ (अग्निपुराण, अध्याय ३७९, श्लोक – १३)

जो सभी प्राणियों के उत्पत्ति और प्रलय को, सद्गति एवं दुर्गति को तत्वतः जानता है, विद्या एवं अविद्या को भी जानता है, उसे भगवान् कहते हैं। इसी आधार पर हम तत्वज्ञानी गुरुजनों के साथ, आद्यशंकराचार्य जी, आद्यरामानुजाचार्य जी जैसे ब्रह्मद्रष्टा महापुरुषों के नाम के साथ भगवान् शब्द लगाते हैं।
श्रीकृष्ण कहते हैं कि भक्त ममत्व एवं अहंकार रहित, दुःख एवं सुख में समानभाव रखने वाला एवं क्षमाशील होता है। वे कहते हैं कि जो प्राणी सदा संतुष्ट रहता है,

समाहित चित्तवाला है, आत्मतत्त्व में दृढ़ निश्चय रखता है, जो मन एवं बुद्धि को मुझ में अर्पित कर देता है, जिससे न संसार दुःखी होता है, और न जो संसार से क्षुब्ध् होता है, जो हर्ष, अमर्ष, भय एवं उद्वेग से मुक्त है, जो निःस्पृह, पवित्रा, दक्ष अर्थात् सत्यकर्म में चतुर, उदासीन, निर्भय तथा पफलभोग के लिए किए गये कर्मों का त्याग करने वाला है - इन सभी लक्षणों को अपने स्वभाव में सदा लाने वाला भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है।

संध्यावंदन, योग, ध्यान, तंत्र, ज्ञान, कर्म के अलावा भक्ति भी मुक्ति का एक मार्ग है। भक्ति भी कई प्रकार ही होती है। इसमें श्रवण, भजन-कीर्तन, नाम जप-स्मरण, मंत्र जप, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, पूजा-आरती, प्रार्थना, सत्संग आदि शामिल हैं।

विद्वानों के अनुसार श्रीकृष्ण ने गीता में भक्त तथा ज्ञानी दोनों प्रकार के प्राणियों को समान रूप से अपना प्रिय स्वीकार किया है।

भक्ति'शब्द सेवा करने के अर्थ में भुज् धतु से बना है। नारद भक्ति सूत्रा के अनुसार ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति हेतु ज्ञान एवं कर्म की अपेक्षा भक्ति का स्थान सवोच्च है।

सा तु कर्मज्ञानयोगभ्यो{प्यध्किरता। ना. भ. सू.-20

मुख्य विषय

भगवान्

भगवान का अर्थ है जितेंद्रिय। इंद्रियों को जीतने वाला। भगवान का अर्थ ईश्वर नहीं और जितने भी भगवान हैं वे ईश्वर कतई नहीं है। ईश्वर या परमेश्वर संसार की सर्वोच्च सत्ता है।भगवान शब्द संस्कृत के भगवत शब्द से बना है। जिसने पांचों इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है तथा जिसकी पंचतत्वों पर पकड़ है उसे भगवान कहते हैं। भगवान शब्द का स्त्रीलिंग भगवती है। वह व्यक्ति जो पूर्णत: मोक्ष को प्राप्त हो चुका है और जो जन्म मरण के चक्र से मुक्त होकर कहीं भी जन्म लेकर कुछ भी करने की क्षमता रखता है वह भगवान है।

भगवान को ईश्वरतुल्य माना गया है इसीलिए इस शब्द को ईश्वर, परमात्मा या परमेश्वर के रूप में भी उपयोग किया जाता है ।

भगवान शब्द का उपयोग विष्णु और शिव के अवतारों के लिए किया जाता है। दूसरा यह कि जो भी आत्मा पांचों इंद्रियो और पंचतत्व के जाल से मुक्त हो गई है वही भगवान कही गई है। इसी प्रकार जब कोई स्त्री मुक्त होती है तो उसे भगवती कहते हैं। भगवती शब्द का उपयोग माँ दुर्गा के लिए भी किया जाता है।

भगवान कौन हैं जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि भगवान वो श्रेष्ठ तत्व है जो हम साधारण मनुष्य को शक्ति प्रदान करते है, आत्मबल प्रदान करते हैं। भगवान रूपी शक्ति के माध्यम से मनुष्य के अंदर एक विश्वाश उत्पन्न होता है कि भगवान रूपी शक्ति हमारे साथ सर्वत्र और सर्वदा विद्यमान रहते हैं और हमारी सभी विपदाओं से रक्षा करते हैं, हमें सुख समृद्धि प्रदान करते हैं । किन्तु भगवान के ये रूप हमारे समक्ष होते हुए भी भगवान के विषय में कई जिज्ञासा साधारण मानव के अन्दर भी और श्रेष्ठ विद्वानों के अन्दर भी उत्पन्न होते हैं। पूर्वकाल में महर्षि काश्यप के मन में भी भगवान् शब्द को लेकर शंका हुई, तत्पश्चात इसके समाधान हेतु उन्होंने विश्वामित्र जी के पास जाकर प्रश्न किया था।

भगवत्परमित्युक्तं तन्त्रमेतत्त्वया गुरो।
किमर्थो भगवच्छब्द: कीदृशो भगवांश्च स:॥

काश्यप जी ने कहा – हे गुरुदेव! तन्त्र का उपदेश करते हुए अपने किसी भगवत् शब्द की बात बताई। कृपया बताएं कि भगवत् शब्द का क्या अर्थ है, एवं भगवान् कैसे होते हैं? ऋषि विश्वामित्र ने शंका का समाधान करते हुए कहा

वदामि भगवच्छब्दं श्रृणुष्व मुनिसत्तम।
ज्ञानं निस्सीममैश्वर्यमनन्यपुरुषाश्रयम्॥
सर्वातिशायिनी शक्ति: बलं सर्वोत्तमं तथा।
अन्यैरहार्यं वीर्यं च तेज: सर्वोत्तरोत्तरम्॥
एतानि षडुदीर्यन्ते भगशब्देन काश्यप।
यस्मिन्निमे गुणा: सन्ति स उक्तो भगवानिति॥ (विश्वामित्र संहिता, अध्याय चार, श्लोक १-४)

हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपको भगवत् शब्द के विषय में बताता हूँ, ध्यान से सुनें।

१) ब्रह्मतत्व का स्वाभाविक ज्ञान
२) किसी सीमा के बंधन से परे एवं बिना किसी अन्य से आश्रय में रहने वाला अपार धनादि का ऐश्वर्य
३) सबों के अंदर समाहित रहने वाली शक्ति का स्वामी
४) साथ ही स्वयं भी सबसे अधिक बलवान्
५) आंतरिक रूप से किसी से पराजित न होने वाला सत्वबल
६) सबसे श्रेष्ठ तेजस्विता
७) इन छः विशेषताओं को "भग" कहा जाता है। जिसमें एकत्रित रूप से यह सभी गुण हों, उसे भगवान् कहा जाता है।

संभर्त्तेति तथा भर्त्ता भकारोर्थद्वयान्वितः।
नेता गमयता स्रष्टा गकारार्थस्तथा मुने॥

"भ" वर्ण के दो अर्थ हैं, भर्त्ता (स्वामी) एवं सबका भरण पोषण करने वाला। हे मुने ! "ग" वर्ण से नेता, गमयता

(अपनी ओर आकर्षित करके नेतृत्वशक्ति से ले जाने वाला), और स्रष्टा अर्थात रचना करने वाला का अर्थ विवक्षित है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य- ये गुण अपनी समग्रता में जिस गण में हों उसे 'भग' कहते हैं। उसे अपने में धारण करने से वे भगवान् हैं। यह भी कि उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों के पूर्व व उत्तर जन्म, विद्या और अविद्या को एक साथ जानने वाले को भी भगवान कहते हैं।

वसन्ति तत्र भूतानि भूतात्मन्यखिलात्मनि
स च भूतेष्वशेषेषु वकारार्थस्ततोऽव्ययः॥

उस भूतात्मा में सभी भूत निवास करते हैं। वह भी सभी भूतों में व्याप्त रहता है, उस अविनाशी के संदर्भ में "व" वर्ण से यही जानना चाहिए। (भूत का अर्थ यहाँ पिशाच आदि नहीं, अपितु इस संसार में जो भी दृश्यादृश्य जड़ चेतन है, उसका संकेत है।)
भगवान् शब्द भग + वान् से बना है । इसमें "भग" धातु है। भग धातु का ६ अर्थ है:- १. पूर्ण ज्ञान, २. पूर्ण बल, ३. पूर्ण धन, ४. पूर्ण यश, ५. पूर्ण सौंदर्य और ६. पूर्ण त्याग। विष्णुपुराण ६.५.७४ में भी यही बात कहा कि "सम्पूर्ण ऐश्वर्य को भगवान कहते हैं।"
लिंगपुराण के अनुसार जो अपने उपासकों को उनके भाव के अनुरूप फल देने में सक्षम हो, उसे भगवान् कहा जाता है-

भावानुरूपफलदो भगवानिति कीर्तितः॥ (लिंगपुराण, पूर्व, ७९-४)

छान्दोग्योपनिषद् ८.७.१ 'एष आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पो' यह भगवान के आठ गुण है। भगवान के अनंत गुण होते है किन्तु ये प्रमुख गुण है इसलिए ये संख्यां में बतलाए अंकित है। भागवत १.१८.१४ 'नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुः।'
ब्रह्मपुराण अनुसार जो विद्या एवं अविद्या को जानता है, उसे भगवान् कहा जाता है। भगवत् शब्द से असीमित ज्ञान, शक्ति, आत्मबल, ऐश्वर्य, सत्व, और तेज का संकेत होता है। ये सब जिसमें हों, वह भगवान् कहलाता है।

वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः॥
भगवच्छब्दवाच्यानि च स वाच्यो भगवानिति।
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः॥ (ब्रह्मपुराण, अध्याय – २३४, श्लोक – ६७-६८)

जिसको तत्ववेत्ता जन "तत्व" कहते हैं, जिसे "स्वयं अद्वितीय ज्ञान" कहा जाता है, उसे ही ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि शब्दों से जाना जाता है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ (श्रीमद्भागवतपुराण, स्कंध – ०१, अध्याय – ०२, श्लोक – ११)

भगवत पुराण के अनुसार जिसके गुण अनंत है, उसको कोई गिन नहीं सकता और अगर कोई गिने तो कितना गिनेगा? जितनी उसकी बुद्धि होगी। भागवत १०.१४.७ 'गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।'

अर्थात कोई व्यक्ति पृथ्वी के एक-एक कणो को भले ही गिन लेने में समर्थ हो जाये। परन्तु भगवान के गुणों को कोई भी नहीं गिन सकता।
भगवान की परिभाषा बताते हुए तैत्तिरीयोपनिषद ३.१ में है कि जिससे संसार उत्पन्न हो, जिससे संसार का पालन हो, जिसमे संसार का लय हो, उसका नाम है भगवान।" वेदांत १.१.२ ने भी यही कहा "जिस भगवान से संसार प्रकट हो, पालन हो, प्रलय हो वो भगवान है।और भागवत १.१.१ में तो पहले श्लोक में कहा "जिससे संसार उत्पन्न हो, जिससे संसार का पालन हो, जिसमे संसार का लय हो, उसका नाम है भगवान। तो भगवान सभी शक्तियों से युक्त होते है। अर्थात भगवान में सभी शक्ति प्रकट होती है। भगवान के अनंत नाम है। अनंत रूप है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि भगवान् शब्द की परिभाषा बहुत व्यापक है ।

भक्त

आराधना करने वाले को भक्त कहा जाता है। और आराधना हेतु एक आराध्य की आवश्यकता होती है। उस आराध्य के प्रति अनन्य स्नेह और लगाव रखने वाले को भक्त कहा जाता है। भक्त वो सभी कारणों से परे होता है। भक्त एक ऐसी दुनिया में होता है जहां कुछ भी सही या गलत नहीं है, जहां कोई पसंद या नापसंद नहीं है। भक्ति वह तरीका है जो आपको उस दुनिया में आसानी से ले जाता है। भक्ति, प्रेम भी नहीं है। प्रेम तो एक फूल की तरह होता है, फूल सुंदर होता है, सुगंधित होता है लेकिन मौसम के साथ वह मुरझा जाता है। भक्ति पेड़ की जड़ की तरह होती है। चाहे जो भी हो, यह कभी नहीं मुरझाती, हमेशा वैसी ही बनी रहती है। पतझर आने पर

जड़ें कभी ऐसा नहीं सोचतीं कि कोई पत्ती ही नहीं बची, अब मैं क्यों पेड़ को मजबूती देने का कार्य करूं? कोई फूल नहीं है, कोई फल नहीं आ रहा है, मैं तो निरर्थक ही कार्य में लगा हूँ ? किन्तु जड़ें बस पेड़ को मजबूती प्रदान करने हेतु अपना कार्य करती रहती है । अतः भक्त भी ऐसे ही निस्वार्थ भाव से भक्ति रूपी कार्य में लीन रहते हैं। भगवन दर्शन दें या न दें, भक्त के जीवन में सुख का संचार हो अथवा न हो, हो सकता है उसने कभी किसी की कोई पूजा न की हो किन्तु वो भी भक्त है। हो सकता है वह उस अवस्था तक ध्यान, प्रेम या पूजा के माध्यम से पहुंच नहीं पाया हो, तथापि वह अपने कर्म में पूरी तन्मयता से लगा हुआ है तो वह भक्त है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण भक्त के गुणों की चर्चा करते हुए कहते हैं:-

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। (७।१६)

अर्थात :- हे अर्जुन! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी- ये चार प्रकार के भक्त मेरा भजन किया करते हैं। इनमें से सबसे निम्न श्रेणी का भक्त अर्थार्थी है। उससे श्रेष्ठ आर्त, आर्त से श्रेष्ठ जिज्ञासु, और जिज्ञासु से भी श्रेष्ठ ज्ञानी है।

१) **आर्त :-** आर्त भक्त वह है जो शारीरिक कष्ट आ जाने पर या धन-वैभव नष्ट होने पर, अपना दु:ख दूर करने के लिए भगवान को पुकारता है।
२) **जिज्ञासु :**- जिज्ञासु भक्त अपने शरीर के पोषण के लिए नहीं वरन् संसार को अनित्य जानकर भगवान का तत्व जानने और उन्हें पाने के लिए भजन करता है।
३) **अर्थार्थी :**- अर्थार्थी भक्त वह है जो भोग, ऐश्वर्य और सुख प्राप्त करने के लिए भगवान का भजन करता है। उसके लिए भोगपदार्थ व धन मुख्य होता है और भगवान का भजन गौण।
४) **ज्ञानी :**- आर्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु तो सकाम भक्त हैं परंतु ज्ञानी भक्त सदैव निष्काम होता है। ज्ञानी भक्त भगवान को छोड़कर और कुछ नहीं चाहता है। इसलिए भगवान ने ज्ञानी को अपनी आत्मा कहा है। ज्ञानी भक्त के योगक्षेम का वहन भगवान स्वयं करते हैं। इनमें से कौन-सा भक्त है संसार में सर्वश्रेष्ठ?

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः।।17।।

अर्थात: इनमें से जो परमज्ञानी है और शुद्ध भक्ति में लगा रहता है वह सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि मैं उसे अत्यंत प्रिय हूं और वह मुझे प्रिय है। इन चार वर्गों में से जो भक्त ज्ञानी है और साथ ही भक्ति में लगा रहता है, वह सर्वश्रेष्ठ है।

भक्ति

'भज् सेवायाम्' धतु से स्त्रा क्तिन् प्रत्यय लगने पर भक्ति शब्द बनता है। वस्तुतः क्तिन् प्रत्यय भाव अर्थ में होता है- 'भजनं भक्तिः', परन्तु वैयाकरणों के अनुसार कृदन्तीय प्रत्ययों के अर्थपरिवर्तन एक प्रक्रिया का अर्घें है। अतः क्तिन् प्रत्यय अर्थान्तर में भी हो सकता है।

भक्ति शब्द का वास्तविक अर्थ है सेवा। सेवा अनेक प्रकार से होती है। भक्ति के बिना किसी भी मनोरथ की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह सर्वविदित है। भगवत्प्राप्ति भी भक्ति के माध्यम से ही होती है। भगवत् गीता के अनुसार भगवान् भी भक्त की भक्ति करते हैं, और भक्त भी भगवान् की भक्ति करते है। ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। गीता, 4.11भगवान् कहते हैं कि मैं स्वयं अपने भक्त का उत्तरदायित्व अपने उपर लेता हूँ।न में भक्तः प्रणश्यति। गीता 9.31 श्रीमदभगवदगीता को भक्ति के सन्दर्भ में प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है, इस ग्रन्थ में भक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है, अपितु भक्ति को व्याख्यायित करते हुए उसके सन्दर्भ में एक निष्ठता पर बल दिया गया है। इस ग्रन्थ में भक्तियोग का वर्णन करते हुए भगवान ने कहा है कि मुझमें अनन्य योग के द्वारा अव्यमिचारिणी भक्ति भी ज्ञान का साध्न है तथा जो पुरुष अव्यभिचारी भक्ति योग के द्वारा मुझे निरंतर भजता है,मयि चानन्ययोगेन भक्तिख्यमिचारिणी। गीता। 13.10 वह ब्रह्म की प्राप्ति के योग्य बन जाता है।मां च योग{व्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। गीत।- 1.26शरणागति और एक निष्ठता का वर्णन करते हुए भगवान कहते हैं कि मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर तथा मुझे प्रणाम कर, इस प्रकार आत्मा को मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण हुआ तू मुझको ही प्राप्त होगा।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्यजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मनं मत्परायणा।। गीता-9.34

विष्णुपुराण में भक्ति की विवेचना अत्यध्कि विस्तार पूर्वक हुआ है। विष्णु भक्त के स्वरूप को बतलाते हुए विष्णुपुराण में यमराज और उनके शिष्य के मध्य हुए वार्तालाप का उद्धरण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कहा गया है कि ''जो पुरुष अपने वर्ण-धर्म से विचलित नहीं होता, अपने सुदृढ़ और विपक्षियों के प्रति समान भाव रखता है, किसी का द्रव्य हरण नहीं करता तथा किसी जीव की हिंसा नहीं करता, उस निर्मलचित्त व्यक्ति को भगवान् विष्णु का भक्त जानें।

विष्णुपुराण के अनुसार जो मनुष्य अपने वर्ण-धर्म के अनुसार ही कार्य करें, अर्थत् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी अपने-अपने कार्य में रहें, जैसा कि ग्रन्थों में और श्रेष्ठगणों के द्वारा बतलाया गया है, तो वही सही रूप में भगवान् विष्णु के सच्चे भक्त के रूप में इस पृथ्वी पर विराजमान है। भगवान् विष्णु के सच्चे भक्त वे हैं जो शत्रु और मित्र में भेद नहीं रखता, तात्पर्य यह है कि भगवान् का सच्चा भक्त किसी भी व्यक्ति के लिए शत्रुता का भाव अपने मन में उत्पन्न नहीं होने देता, उसके लिए तो सभी मनुष्य एक ही सदृश होते हैं, अर्थात् ईश्वर के भक्त होते हैं।

वेद, उपनिषद, पुराण सभी ने भक्ति को स्वीकार किया है। वैदिक काल में भक्ति शब्द का प्रयोग न होकर भक्ति से संबंधित अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है - ऋग्वेद 1.127.5 में भक्त एवं अभक्त का प्रयोग। किन्तु उस काल में भी भक्ति भावना पूर्ण रूपेण विद्यमान थी। ऋग्वेद में देवताओं के राजा इन्द्र को माता-पिता, मित्रा एवं भाई के रूप में सम्बोधित कर उनकी वन्दना की गयी है। भक्ति को स्पष्ट रूप से प्रगट करता हुआ एक सम्पूर्ण सूक्त, अग्नि-सूक्त में विद्यमान है किन्तु वैदिक काल में भक्ति के द्वारा मुक्ति या आत्मतत्त्व की प्राप्ति का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। वहाँ वैदिक स्तुतियों का मुख्य लक्ष्य ध्न, ऐश्वर्य तथा सांसारिक उन्नति प्राप्त करना था।

उपनिषदों में भक्ति शब्द का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है -भगवदभक्तिरसायन एवं भक्ति रस, पृ. 7 उस काल में भक्ति का वही स्वरूप विद्यमान था, जो कालान्तर में प्राप्त होते हैं, जहाँ देव एवं गुरु में पराभक्ति से ज्ञानप्राप्ति को स्वीकार किया गया है -श्वे. उ.-6.23, डॉ. राधकृष्णन ने उपनिषदों में प्राप्त उपासना तत्त्व को ही भक्ति स्वीकारा है, एवं कहा है कि उपासना ही भक्ति की उत्पत्ति का मार्ग है।

महाभारत काल में भी भक्ति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। उस काल में भक्ति वैदिक काल की भांति अनुष्ठान परक नहीं थी, अपितु यहाँ ईश्वर के प्रति स्नेह और शरणागति की भावना ही भक्ति का स्वरूप था। महाभारत के शान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्य में भक्ति की विशद् व्याख्या देखने को मिलती है। इसमें भक्ति की भावात्मक व्याख्या, अवतारों की परम्परा तथा भक्तों का महात्म्य प्राप्त होता है। इसमें मुख्य रूप से नारायण के दशावतार, यथा- मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण तथा कल्कि का वर्णन किया गया है। महाभारत के इसी पर्व में भक्ति के साध्य के रूप में रजोगुण एवं तमोगुण से मुक्ति को बतलाया गया है - महा. शान्तिपर्व-339. 26 और यह भी बतलाया गया है कि अन्तः करण एवं पापमुक्त सच्चे भक्तों को ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है- महा. शान्तिपर्व-336. 74

पुराणों में ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की चर्चा पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है किन्तु यहाँ भी भक्ति को विशेष स्थान प्राप्त है। पद्म पुराण में भक्ति लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार की कही गई है। स्कन्द पुराण में भी भक्ति के संबंध में विस्तार से विवेचना प्राप्त होती है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में भक्ति के नौ भेद कहे गये हैं। गरुड़पुराण में कहा गया है कि भक्ति में समान रूप से सबका अधिकार है, भक्तिमान मनुष्य ही श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम होता है। गरुडपुराण में आठ प्रकार की भक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। भागवत पुराण में नौ प्रकार के भक्ति के साध्यों का उल्लेख प्राप्त होता है, उनमें विशेष रूप से विष्णु के भक्ति को स्वीकारा गया है।

श्रवणकीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। भाग. पु.-7/5/23-24

लिंगपुराण में वर्णित है कि भगवान शिव की भक्ति से संसार में बद्ध जीव मुक्त हो जाते हैं, यहाँ शिव की भक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। वहाँ भागवान की सेवा को ही भक्ति कहा गया है। यह भक्ति कायिक, वाचिक एवं मानसिक भेद से तीन प्रकार की है। शिव पुराण में भक्ति का विभाग सगुण-निर्गुण, वैधिक -स्वभाविक, नैष्ठिक्य नैष्ठिकी, सार्घै-निरर्घै इत्यादि रूपों में किया गया है।

उपसंहार

भगवान के साथ भक्त के जुडऩे की प्रवृत्ति ही भक्ति है। भक्ति का तात्पर्य है पूर्ण समर्पण। सरल शब्दों में हम कहते हैं कि हमारी आत्मा परमात्मा की डोर से बंध गई। स्वयं के अंतस को ईश्वर के साथ जोड़ देना ही भक्ति है । और ईश्वर के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित होने वाला सच्चा साधक ही भक्त है।जिसके विचारों में शुचिता (पवित्रता) हो, जो अहंकार से दूर हो, जो किसी वर्ग-विशेष में न बंधा हो, जो सबके प्रति सम भाव वाला हो, सदा सेवा भाव मन में रखता हो, ऐसे व्यक्ति विशेष को हम भक्त का दर्जा दे सकते हैं। नर सेवा में नारायण सेवा की अनुभूति होने लगे, ऐसी अनुभूति ही स'ची भक्ति कहलाती है। भक्त के लिए समस्त सृष्टि प्रभुमय होती है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-जो पुरुष आकांक्षा से रहित, पवित्र, दक्ष और पक्षपातरहित है, वह सुखों का त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है, परंतु अफसोस यह कि इस दौड़ती-भागती और तनावभरी जिंदगी में हम कई बार प्रार्थना में भगवान से भगवान को नहीं मांगते, बल्कि भोग-विलास के कुछ संसाधनों से ही तृप्त हो जाते हैं।

भक्ति का अर्थ मंदिर जा कर राम-राम कहना नहीं है। वो इन्सान जो अपने एकमात्र लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित है,

वह जो भी काम कर रहा है उसमें वह पूरी तरह से समर्पित है, वही सच्चा भक्त है। और वही उसकी भक्ति है। जब व्यक्ति मोह माया से दूर हटकर अपनी महत्वाकांक्षाओं को नियंत्रित करता है, तभी उसकी चेतना झंकृत होती है और परमात्म चिंतन में ईश्वरीय भक्ति साकार होने लगती है। सच्चे भक्त के रूप में आज हम ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा, हनुमान, चैतन्य महाप्रभु, विवेकानंद आदि सैकड़ों महापुरुष को जानते हैं जिनकी सच्ची भक्ति से भगवन प्रसन्न हुए थे। भक्त सही मायने में सुख और आनंद का पर्याय है। जब आपकी कामना या प्रार्थना राममय हो जाए, तो यही भक्ति है। भक्त ही एकमात्र ऐसा है जो हृदय से यदि भगवान को याद करे तो परमपिता भी स्वयं को उसके अधीन कर देते हैं। इसलिए कहा भी गया है कि सच्ची भक्ति से भगवान भी भक्त के वश में हो जाते हैं। भक्तिभाव का आधार प्रेम, श्रद्धा और समर्पण है। भगवान राम ने शबरी के झूठे किए बेर भी प्रेम और भक्तिभाव के कारण खाए थे। मन में भक्ति भाव के उठने के बाद भक्त के व्यक्तित्व के नकारात्मक गुण दूर हो जाते हैं और उसके व्यक्तित्व का उन्नयन होने लगता है। भक्त अहंकार से मुक्त होकर अपनी अंतस चेतना में ईश्वर की अनुभूति करने लगता है।

सन्दर्भ सूची

1. पुराण विमर्श उपाध्याय बलदेव, चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी, 1965.
2. भारतीयदर्शन, उपाध्याय बलदेव, चौखम्बा ओरियन्टालिय वाराणसी, संस्करण, 1867.
3. भागवतपुराण, रत्न पञ्चानन, कलकत्ता में, वि. सं.-1315 में प्रकाशित
4. अग्नि पुराणम् गुरूमण्डल ग्रन्थमाला सीरीज-19
5. ऐतरेय ब्राह्मणम्, नागप्रकाशक, जवाहर नगर दिल्ली
6. नारदीय पुराण नन्दवाना लक्ष्मीनारायण न्यू भारतीय बुक कॉर्पोरेशन
7. ब्रह्मसूत्रा: वेदान्त दर्शनम शास्त्रा उदयवीर, कुमार विजय गोविन्दराम, हासानन्द 440, नई सड़क; दिल्ली, 1982.
8. ब्रह्माण्डपुराण क्षेमराज कृष्ण मुम्बई 1906
9. भारतीय तत्त्व मीमांसा. अधिकारी हरिप्रसाद, नवशक्ति प्रकाशन, वाराणसी, 2007.
10. विष्णुपुराण, गुप्त मुनिलाल गीताप्रेस गोरखपुर, 1993.